Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

अभिज्ञान–शाकुन्तलम् नाटक में वर्णित राजधर्म – एक चिन्तन

डॉ. जितेन्द्र कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पंचकूला, हरियाणा

Article Info
Volume 5, Issue 4
Page Number : 131-136
Publication Issue :
July-August 2022
Article History
Accepted : 01 July 2022
Published : 20 July 2022

शोध सारांश– **'कालिदासस्य सर्वस्वम् अभिज्ञानशाकुन्तलम्।'**[1] इस सूक्ति के महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न आचार– विचारों का वर्णन किया है। साथ ही उन आचरणों के अनुप्रयोग का क्षेत्र भी दर्शाया है। इस शोध पत्र में महाकवि द्वारा प्रस्तुत नीतियों के अनुप्रयोग के ज्ञान के साथ–साथ, उदाहरणों के माध्यम से हम उनके अनुसरण के परिणामों को भी जानेंगे। इससे हम अपने जीवन की समस्याओं पर भी विचार कर सकेंगे और निर्णय ले सकेंगे। जिससे हम विभिन्न स्थितियों से नई रणनीतियाँ अपनाने में सहायता मिलेगी।

मुख्य षब्द– कालिदास, अभिज्ञानषाकुन्तलम्, राजधर्म, स्वेच्छाचारी।

नाटक के नायक की पृष्ठभूमि– राजा दुष्यन्त ने शिकार खेलते हुए जब आश्रम में प्रवेश किया, तब यह उसके लिए अदृश्य व अज्ञात था। उसे आश्रम–वासियों द्वारा आमंत्रित नहीं किया गया था, बल्कि विधि द्वारा प्रोत्साहित किया गया था। अन्यथा अब से पहले उसने कभी इस आश्रम में प्रवेश नहीं किया था।

आश्रम के स्वामी कण्व उन दिनों अपनी पुत्री शकुन्तला के प्रतिकूल भाग्य को शान्त करने के लिए सोमतीर्थ गए थे।

तपस्वी – इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलाम् अतिथि–सत्काराय नियुज्य दैवम् अस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः।[2]

उसी समय शिकार के कारण राजा दुष्यन्त आश्रम के निकट आ गए। तभी आश्रम में राक्षसों द्वारा उत्पात मचा दिया गया और वे तपस्वियों के यज्ञ में बाधा उत्पन्न करने लगे। कण्व के शिष्यों ने राजा से उन राक्षसों से आश्रम की रक्षा करने का अनुरोध किया।

उभौ – तत्र भवतः कण्वस्य महर्षेः असान्निध्याद् रक्षांसि न इष्टि–विघ्नम् उत्पादयन्ति। तत् कतिपयरात्रं सारथि–द्वितीयेन भवता सनाथी–क्रियताम् आश्रमम् इति।[3]

राजा ने अपने कर्तव्य का पालन किया। उसने यज्ञ के विघ्न हटा दिए। आश्रम पूरी तरह से संरक्षित गया। उसी समय राजा की मुलाकात शकुन्तला से हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा दुष्यन्त ने काम, क्रोध, मद, लोभ आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं की थी। भले ही उसने अपने सभी बाहरी शत्रुओं को परास्त कर दिया हो। जब उसने शकुन्तला से गन्धर्व विवाह किया तब उस कार्य के असामान्य परिणाम पर भी विचार नहीं किया। हालाँकि वह स्पष्ट रूप से जानता था कि आश्रम वासियों के साथ नम्रतापूर्वक न्यायोचित व्यवहार किया जाना चाहिए। उसने आश्रम के विरोधी स्वभाव वाले गंधर्वों के रीति–रिवाज के अनुसार शकुन्तला से विवाह किया।

शायद यह सब एक अदृश्य उपबंध था। तब दुष्यन्त का विवेक भी अदृश्य द्वारा नियन्त्रित हुआ होगा। अन्यथा ऐसे राजमुनि के लिए ऐसी विवाह–पद्धति प्रशंसनीय नहीं होती। यह एक चारित्रिक पतन माना है। यह राजा के प्राधिकार की अतिव्याप्ति है। यह सच है कि राजा को आश्रम की रक्षा करनी चाहिए, परंतु आश्रम का

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

धर्म उससे भी कहीं अधिक रक्षा करने योग्य होता है। आश्रम को बाहरी बाधाओं से बचाना राजा का कर्तव्य था, लेकिन उसे आश्रम के भीतर कोई ऐसा काम नहीं करना था, जो उस धर्म में हस्तक्षेप करता हो। स्वतंत्र राजा को कभी स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए।

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव।। [4]

हे ब्रह्मन्! दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज को यह तुम्हारी पुत्री पृथ्वी के कल्याण के लिए धारण करती है। जैसे शमी लता अपने अन्दर अग्नि को धारण करती है।

जब ऋषि कण्व ने यह आवाज सुनी तो वे एक पल के लिए स्तब्ध रह गए। वे विधि के विधान की विचित्रता को स्पष्ट देखते हैं। जब वे सोमतीर्थ गए तो कुछ दिनों तक इस आश्रम से दूर रहे। इसी दौरान राजा दुष्यन्त यहाँ आए। परन्तु जब वे यहाँ थे तो राजा किसी भी कारण से यहाँ नहीं आये। राजा को यहाँ आने के लिए किसी व्यक्ति–विशेष की अनुमति की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि पूरा आश्रम परिसर उनके शासन की परिधि में शामिल था। उसका कण्व की अनुपस्थिति में आना, उसी समय राक्षसों द्वारा यज्ञ में विघ्न डालना, उसका यहीं आश्रम के पास कुछ दिनों तक रहना, उसी समय कण्व की पुत्री शकुन्तला से गंधर्व विवाह करना। कण्व का पुत्री शकुन्तला के प्रतिकूल भाग्य को शान्त करने के लिए तीर्थ स्थान पर जाना – यह विधि द्वारा निर्धारित था।

आश्रमों का रक्षक एवं पालक– महाकवि कालिदास का आशय है कि जिस प्रकार सामान्य ऋषिगण अपने आचरण से कभी विमुख नहीं होते, उसी प्रकार एक राजा को भी अपनी प्रजा के कल्याण से कभी विमुख नहीं होना चाहिए। उस समय के शासकों ने उपयुक्त नीति द्वारा इसका सफलतापूर्वक आचरण किया। चारों आश्रमों में श्रेष्ठ गृहस्थ आश्रम में रहते हुए राजा दुष्यन्त ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सभी आश्रमों की रक्षा और पालना की। उसने इस कार्य को अपने धार्मिक कर्तव्य मानकर किया। वह तपस्वी की भाँति शास्त्रविधि के अनुसार प्रजा की रक्षा रूपी इस धर्म का पालन करता रहा। तप का संचय करके स्वभावतः ही राजर्षि हो गया।

"अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वभोग्ये,
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः।।" [5]

और भी –

"औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा।
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव ।।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय।
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्।।" [6]

अलोभी व कर्तव्य–परायण– लोभ के वशीभूत होकर किसी का धन नहीं हरना चाहिए, यह नीति महाकवि कालिदास ने धनमित्र की मृत्यु का वर्णन करते हुए व्यक्त की है। प्रतिहारी से धनमित्र की मृत्यु का समाचार सुनकर अलोभी और कर्तव्य–परायण राजा दुष्यंत ने पुत्रहीन धनमित्र की संपत्ति न हड़प कर उसकी गर्भवती पत्नी के लिए त्याग दी। इस तरह राजा ने अप्रत्यक्ष रूप से धनमित्र के परिवार की रक्षा की।

'स खलु गर्भः पित्र्यमृक्थमर्हति। [7]

वह गर्भ पितृत्व से मुक्त होने योग्य है।

कर संग्रह की नीति– राजा को प्रजा के कल्याण के लिए लोगों से कम कर लेना चाहिए। कर का संग्रह करते हुए षष्ठांश नीति ध्यान में रखना चाहिए। राजा को उन लोगों से कर के रूप में धन का संग्रह नहीं करना चाहिए

जो धन और अन्य चीजों के संग्रह में प्रत्यक्ष रूप से योगदान नहीं करते। इस बात का ध्यान रखते हुए राजा ने तपस्वियों से कर के रूप में उनका केवल छठा भाग लिया।

राज्य में धन की आवश्यकता की पूर्ति हेतु राजा दुष्यन्त प्रजा से छठा भाग लेता था। दुष्यंत द्वारा अपनाई गई यह नीति हर समय उपयोगी है। इस नीति से संतुष्ट व्यक्ति निर्धारित करों का भुगतान करने के बाद अपने संसाधनों को परिवार कल्याण पर खर्च कर सकेगा।

''राजा– मूर्ख, अन्यमेव भागमेते तपस्विनो निर्वहन्ति, यो रत्नराशीनपि विहाय अभिनन्द्यते। पश्य –

''यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपानां क्षयि तद्धनम्।

तपः षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः।। [8]

अर्थात् राजा दुष्यन्त कहता है – अरे मूर्ख! ये तपस्वी लोग कर के रूप में अपने तप के फल का कुछ भाग देने का प्रस्ताव रखते हैं, जिनको रत्नों की राशि देकर भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

आश्रम मर्यादा का पालन– राजा को मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। वह सदा यह सोचकर कार्य करे कि मेरे कार्यों से किसी को कोई हानि तो नहीं होगी। आश्रम के प्रति सदैव सचेत रहते हुए राजा दुष्यंत ने अपना रथ तपोवन के बाहर खड़ा किया और साधारण वस्त्र धारण कर आश्रम में प्रवेश किया।

''आश्रमोपरोधो माभूत् तदिहैव रथं स्थापय, यावदवतरामि।'' [9]

आश्रम में कोई व्यवधान न आए, इसलिए रथ यहीं रखो।

रथ को देखकर भयभीत हाथी जब अरण्य में प्रवेश करता है, तब आश्रम में अशांति उत्पन्न होने से रोकने का प्रयास करता है।

''स्वैरं स्वैरं गच्छन्तु भवत्यः। आश्रमबाधा यथा न भवति, तथा अहमपि यतिष्ये।'' [10]

अर्थात् तुम निश्चिन्त होकर जाओ। मैं आश्रम में शांति बहाल करने का प्रयत्न करूंगा।

राजा दुष्यन्त ने अपने अंगरक्षकों को तपोवन से दूर के स्थान पर तैनात कर दिया।

यावद् अनुयात्रिकान् अतिदूरे तपोवनस्य निवेशयामि। [11]

अभिज्ञान शाकुन्तलम् के दूसरे अंक में दुष्यंत का यह कथन भी इस संबंध में साक्ष्य प्रदान करता है।

''यथा च मे सैनिकास्तपोवनं चाभिरुन्धन्ति, दूरात् परिहरति च तथा निषेद्धव्याः।'' [12]

निरभिमानी राजा

राजा दुष्यंत ने सभ्य वेश धारण कर तपोवन में प्रवेश किया और आश्रमवासियों का कुशलक्षेम पूछा। राजा को अभिमान त्यागकर परिस्थिति के अनुसार कार्य करना चाहिए। उसको दरबार लगाकर होकर प्रजा के भले–बुरे का निर्णय करना चाहिए। राजा का यह व्यवहार आश्रमवासियो की समस्याओं का समाधान करने की दिशा में उचित कदम है।

विशिष्ट कार्य–पद्धति का चयन– राजा को गृहस्थ से सम्बद्ध कर्तव्यों की पूर्ति के लिए विशिष्ट कार्य–पद्धति का चयन करना चाहिए। किसी भी शासक किसी महत्त्वपूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए एक उपयुक्त विकल्प के बारे में भी सोचना चाहिए। ताकि यदि वह प्रत्यक्ष रूप से उस कार्य को करने में असमर्थ हो, तो उसके स्थान पर कोई दूसरा वह कार्य कर ले। इस प्रकार, जब एक से अधिक कार्य सामने आएं तो कार्य को वरीयता के क्रम में किया जाना चाहिए।

राजा दुष्यंत ने गृहकार्य और प्रजा से संबंधित कार्य के एक साथ पडने पर गृहकार्य का विकल्प सोचकर, प्रजा से संबंधित आवश्यक कार्य को ही किया। आश्रम की रक्षा के लिए गुरुजनों की आज्ञा की अवहेलना करने में असमर्थ राजा दुष्यंत पुत्रपिण्डपालन नामक व्रत के दिन स्वयं राजमहल नहीं गए, बल्कि अपने स्थान पर विदूषक को भेज दिया।

''सखे! माधव्य! त्वमपि अम्बाभिः पुत्र इव गृहीतः। स भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्य–व्यग्रताम् अस्माकम् आवेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकार्यम् अनुष्ठातुम् अर्हति।'' [13]

दण्ड विधान

राज्य में कोई अपराध न हो, इसके लिए राजा को अपराध के अनुसार दण्ड देना चाहिए। राजा दुष्यंत ने दुष्टों को दण्ड देने तथा गलत मार्ग पर चलने वालों पर नियंत्रण करने का भरसक प्रयत्न किया। उस समय चोरी जैसे अपराधों के लिए मृत्युदंड का प्रावधान था।

''नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः संविभक्ता–
स्त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं जनानाम्।।'' [14]

इस नीति का प्रयोग अच्छी तरह होने के कारण दुष्यन्त के शासन में किसी ने भी दुराचरण नहीं किया।

''कः पौरवे वसुमती शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु।'' [15]

राजा को प्रजा को बुरे मार्ग पर चलने से रोकने का प्रयास करना चाहिए। दुष्यंत इन सभी मामलों में सावधान थे। उनके शासनकाल में किसी ने गलत रास्ता नहीं अपनाया। इस संदर्भ में कण्व का शिष्य शार्गरव कहता है –

''महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।'' [16]

प्रजा शब्द का प्रयोग न केवल मानव के लिए, बल्कि सभी जीवधारियों के लिए किया जाता है। पशु–पक्षी आदि सभी को सुरक्षा प्रदान करना राजा का मुख्य कर्तव्य है। अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अंक में आश्रम के एक तपस्वी ने राजा दुष्यंत को 'न खलु न खलु' जैसे वचन के माध्यम से इस नीति को समझाया है।

राजा को चाहिए कि वह साधु जनों की बातें सुने। कई बार प्रशासक केवल सज्जनों के वचनों के अनुसार ही सही काम कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, राजा दुष्यंत ने तपस्वी की सलाह के बाद भी हिरण को नहीं मारा।

धर्म पालन में सदा उद्यत– राजा को कभी भी अपना धर्म नहीं भूलना चाहिए। अकारण आराम नहीं करना चाहिए। दुष्यंत ने सदैव इस नीति का पालन किया है। राजकीय कार्य के प्रति दुष्यंत की निष्ठा सराहनीय है।

'अथवा कुतो विश्रामो लोकपालानाम्?' [17]

अर्थात् लोक के रक्षक को विश्राम कहाँ?

कंचुकी द्वारा प्रयुक्त यह वाक्य दुष्यंत की राजधर्म को प्रकट करता है। यद्यपि वियोग की स्थिति में उन्हें शकुन्तला की याद आई, फिर भी वे राजा के कर्तव्य को कभी नहीं भूले।

''राजा– वेत्रवति! मद्वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूहि, अद्य चिरप्रबोधनात् न सम्भावितम् अस्माभिर्धर्मासनम् अध्यासितुम्, यत् प्रत्यवेक्षितम् आर्येण पौरकार्यं तत् पत्रम् आरोप्य प्रस्थाप्यतामिति।'' [18]

अर्थात् राजा– वेत्रवती! मेरी ओर से मंत्री से कहो कि आज दीर्घकालीन जागरण के कारण हमारे लिए प्रजा के कार्य हेतु दरबार लगाना संभव नहीं है, इसलिए जो न्याय देने सम्बन्धी मेरे काम हैं, उन्हें पत्र पर लिखकर भेज दिया जाए।

शरणागतों का रक्षक– जैसे वृक्ष अपने सिर से प्रचण्ड गर्मी को सहकर अपने शरणागतों के कष्टों को दूर कर देता है, उसी प्रकार राजा दुष्यंत भी भोग–विलास में रुचि न रखते हुए प्रजा के कल्याण के बारे में सोचते थे।

स्व सुखनिरभिलाष खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते सृष्टिरेवंविधैव।

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्ण
शमयति परित्तापं छायया संश्रित्तानाम्।। [19]
''प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा
निषेवते शान्तमना विवित्तम्।
यूथानि सञ्चार्य रविप्रतप्तः
शीतं गुहास्थानमिव द्विपेन्द्रः।। [20]
''न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मि–
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः।
क्व बत हरिणकाणां जीवितं चातिलोलं
क्व च विशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते।। [21]

अहिंसा परम धर्म– राजा द्वारा बिना कारण की गई हिंसा उचित नहीं है। यह नीति महाकवि कालिदास द्वारा अपने नाटक में व्यक्त की गई है।

'आत्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहत्तुमनागसि।' [22]

महाकवि ने घोषणा की कि राजा का धर्म हिंसा नहीं होना चाहिए। राजा का शस्त्र सज्जनों के उद्धार के लिए प्रयोग होना चाहिए। जो प्रजा की रक्षा करता हो, वही राजा कहलाने योग्य है।

इस प्रकार इस नाटक में महाकवि का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी के जीवन में अहिंसा सदैव बनी रहे। राजा को प्रजा के साथ अच्छे संबंध बनाए रखने चाहिए। राजा दुष्यंत का प्रजा के साथ बहुत विश्वसनीय संबन्ध था।

उपसंहार– इस नाटक में वर्णित राजधर्म का उद्देश्य प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से लोक कल्याण ही था। राजा और सेनापति के लिए भी ये नीतियां समान हैं जिन्हें राजा द्वारा राष्ट्र के उत्थान के उद्देश्य से नियुक्त किया जाता है। यदि प्रशासक गण इन कार्यों के प्रति निष्ठा, सभी प्राणियों के प्रति सम्मान तथा वंचित जातियों के प्रति आदर का भाव रखकर कार्य करें तो देश के सभी प्राणी सुखी हो जाएंगे। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि सरकार इस तरह से विविध नीतियां अपनाकर देश का कल्याण करने में सक्षम होगी। जब सरकार कोई अच्छा काम शुरू करती है, तो प्रशासक भी उसके अनुसार काम करते हैं। इन्द्र की सहायता करने गए दुष्यंत को राजसी कर्तव्यों के साथ–साथ अन्य कर्तव्य भी निभाने पड़े।

महाकवि ने स्पष्ट संकेत दिया कि साधारण मानव को भी प्रशासकों के साथ मिलकर यह सोचकर काम करना चाहिए, जिससे सभी लोकों का कल्याण हो। इस प्रकार यदि मानव अभिज्ञान शाकुंतल में वर्णित नवाचारों को अपने मन में उतारकर कार्य करें तो स्वयं, परिवार और राष्ट्र सहित सम्पूर्ण विश्व का कल्याण अवश्य होगा।

संदर्भ सूची –

1. अभिज्ञानं शकुन्तलायाः येन सः, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, इति व्युत्पत्ति।
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, द्वितीय अंक
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4.4
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 2.15
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5.5
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, छठा अंक

8. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 2.14
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक, पृष्ठ 25
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पृष्ठ 66
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पृष्ठ 67
12. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, द्वितीय अंक, पृष्ठ 84
13. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पृष्ठ 104
14. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5.7
15. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1.27
16 अभिज्ञानशाकुन्तलम, 5.10
17. अभिज्ञानशाकुन्तलम्,, प्रथम अंक
18. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, छठा अंक पृष्ठ– 282
19. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पांचवा अंक, पृष्ठ– 220
20. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5.3
21. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1.10
22. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1.11

संदर्भ ग्रंथ

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (सम्पा.) सुबोधचन्द्र पन्त, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली (2011)
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (सम्पा.) गङ्गासागर राय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी (वि. सं. 2075)
3. कालिदास–ग्रन्थावली, (सम्पा.) ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी (2019)
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (सम्पा.) कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान प्रकाशन, वाराणसी (1976)
5. महाकवि कालिदास, (सम्पा.) रमाशंकर तिवारी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी (1993)
6. कालिदास का चिन्तन एवं अनुभूतियाँ, (सम्पा.) अच्युतानन्द, भारतीय प्राच्यविद्या शोध संस्थान, वाराणसी